उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १२० ॥

कुदो चक्खुदंसणीहितो णिप्पिडिय अचक्खुदंसणीसु समुप्पज्जिय अंतरिदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे गमिय पुणो चक्खुदंसणीसुप्पण्णस्स तदुवलंभादो ।

अचक्खुदंसणीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १२२ ॥

केवलदंसणिस्स पुणो अचक्खुदंसणुप्पत्तीए अभावादो ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ १२३ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तमुक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिच्चेदेहि दोण्हं भेदाभावादो ।

चक्षुदर्शनी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल होता है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन के बराबर होता है ॥ १२० ॥

क्योंकि, चक्षुदर्शनी जीवोंमेंसे निकलकर अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हो अन्तर प्रारम्भ कर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनोंको विताकर पुनः चक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवके चक्षुदर्शनका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अचक्षुदर्शनी जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर होते हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, अचक्षुदर्शनका अन्तर केवलदर्शन उत्पन्न होनेपर ही हो सकता है; पर एक बार जो जीव केवलदर्शनी हो गया उसके पुनः अचक्षुदर्शनकी उत्पत्ति नहीं होती ।

अवधिदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा अवधिज्ञानी जीवोंके समान है ॥ १२३ ॥

क्योंकि, अवधि ज्ञानी और अवधिदर्शनी जीवोंके जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण हुई भी अपेक्षा कोई भेद नहीं है ।

अ. क. प्रत्योः णाणभंगो इति पाठः ।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो[1] ॥ १२४ ॥

अंतराभावं पडि दोण्हं भेदाभावादो ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १२६ ॥

कुदो ? किण्हलेस्सियस्स णीललेस्सं, णीललेस्सियस्स काउलेस्सं, काउलेस्सियस्स तेउलेस्सं गंतूण अप्पप्पणो[3] लेस्साए जहण्णकालेणागदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ १२७ ॥

कुदो ? पुव्वकोडाउओ मणुस्सो गब्भादिअट्ठवस्साणमब्भंतरे छअंतोमुहुत्ताअत्थि[4] त्ति किण्हलेस्साए परिणामिय[5] आदिं करिय पुणो णील-काउ-तेउ-पम्म-सुक्कलेस्सासु

केवलदर्शनी जीवोंके अन्तरकी प्ररूपणा केवलज्ञानी जीवोंके समान है ॥१२४॥

क्योंकि, अन्तरके अभावकी अपेक्षासे इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

लेश्यामार्गणानुसार कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, कृष्णलेश्यावाले जीवके नीललेश्यामें, नीललेश्यावाले जीवके कापोतलेश्यामें व कापोतलेश्यावाले जीवके तेजोलेश्यामें जाकर अपनी अपनी पूर्व लेश्यामें जघन्य कालके द्वारा पुनः वापिस आनेसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण होता है ॥ १२७ ॥

क्योंकि, एक पूर्वकोटिकी आयुवाला मनुष्य गर्भसे लेकर आठ वर्षके भीतर छह अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर कृष्णलेश्या रूपसे स्वयंको परिणमाकर प्राप्त हुआ । इस प्रकार कृष्णलेश्याका प्रारंभ कर पुनः नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओंमें परिपाटी-

---

१ अ. ब. म. प्रतिषु णाणभंगो इति पाठः । २ कृष्ण-नील-कपोतलेश्यानामेकशः अंतरं जघन्येनान्तर्मुहूर्तः उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि साधिकानि । त. रा. ४, २२, १०.

३ मु. प्रतौ अप्पणो इति पाठः । ५ मु. प्रतौ अंतोमुहुत्तमत्थि इति पाठः ।

४ मु. प्रतौ परिणमिय इति पाठः ।

परिवाडीए अंतरिय संजमं घेत्तूण तिसु सुहलेस्सासु दे[illegible]व्वकोडिमच्छिय पुणो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुप्पज्जिय तत्तो आगंतूण मणु[illegible]सेसुप्पज्जिय सुक्क-पम्म-तेउ-काउ-णीललेस्साओ कमेण परिणामिय किण्णलेस्साए परिणामयस्स दसअंतोमुहुत्तूण-अट्ठवस्सेहि ऊणियाए पुव्वकोडियाए सादिरेयाणं तेत्तीससागरोवमाणं अंतरस्सेणुवलंभादो। एवं चेव णील काउलेस्साणं पि वत्तव्वं। णवरि अट्ठ-छअंतोमुत्तेहिऊणट्ठवस्सेहि[1] ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीससागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं।

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिय-सुक्कलेस्सियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १२८ ॥

सुगमं।

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १२९ ॥

क्रमसे आकर अन्तर करता हुआ, संयम ग्रहण कर तीन शुभ लेश्याओंमें कुछ कम पूर्व कोटि कालप्रमाण रहा और फिर तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। फिर वहांसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर शुक्ल, पद्म, तेज, कापोत और नीललेश्या रूपसे क्रमसे स्वयंको परिणमाकर अन्तमें कृष्णलेश्यामें आगया। ऐसे जीवके दश अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण कृष्णलेश्याका अन्तरकाल प्राप्त होता है। इसी प्रकार नीललेश्या और कपोतलेश्याके उत्कृष्ट अन्तरकालका प्ररूपण करना चाहिये। विशेषता केवल इतनी है कि नीललेश्याका अन्तर कहते समय आठ और कापोत लेश्याका अन्तर कहते समय छह अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षसे हीन पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण अन्तरकाल बतलाना चाहिये।

तेजलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्यावाले जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १२८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले जीवोंका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है ॥ १२९ ॥

---

१ मु. प्रती अंतोमुहुत्तूण इतिपाठः।

२ तेजःपद्मशुक्ललेश्यानामेकस्य अंतरं जघन्येनांतर्मुहूर्तः, उत्कर्षेणानंतः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः। त. रा. ४, २२, १०, णेडतियाणं एवं णवरि य उक्कस्सविरहकालो दु। पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ॥ गो जी. ५५३.

कुदो ? तेउ-पम्म-सुक्कलेस्साहितो अविरुद्धमण्णलेस्सं गंतूण जहण्णकालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो लेस्साणमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३० ॥

कुदो ? अप्पिदलेस्सादो अविरुद्धाणप्पिदलेस्साणं गंतूण अंतरियावलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टेसु किण्ण-णील-काउलेस्साहि अदिक्कंतेसु अप्पिदलेस्सागदस्स सुत्तुक्कस्संतरुवलंभादो ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिय-अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३१ ॥

सुगमं ।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३२ ॥

कुदो ? भवियाणमभवियाणं च अण्णोण्णसरूवेण परिणामाभावादो ।

क्योंकि, तेज, पद्म व शुक्ल लेश्यासे अपनी अविरोधी अन्य लेश्यामें जाकर व जघन्य कालसे लौटकर पुनः अपनी अपनी पूर्व लेश्यामें आनेवाले जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तरकाल पाया जाता है ।

तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याका उत्कृष्ट अन्तरकाल अनन्त काल होता है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाणके बराबर होता है ॥ १३० ॥

क्योंकि, विवक्षित लेश्यासे अविरुद्ध अविवक्षित लेश्याओंको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ । पुनः आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके कृष्ण नील और कापोत लेश्याओंके साथ बीतनेपर विवक्षित लेश्याको प्राप्त हुए जीवके उक्त लेश्याओंका सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है ।

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

भव्यसिद्धिक और अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि, भव्य और अभव्य जीवका अन्योन्यस्वरूप परिणमनका अभाव है अर्थात् भव्य कभी अभव्य नहीं हो सकता और अभव्य कभी भव्य नहीं हो सकता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठि-वेदगसम्माइट्ठि-उवसमसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छाइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३३ ॥

सुगमं ।

जहण्णेणंतोमुहुत्तं ॥ १३४ ॥

कुदो ? सम्माइट्ठिस्स मिच्छत्तं गंतूण जहण्णेण कालेण पुणो सम्मत्तमागदस्स जहण्णंतरुवलंभादो । एवं वेदगसम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं, विसेसाभावादो । एवं उवसमसम्माइट्ठिस्स वि । णवरि उवसमसेडीदो ओदिण्णस्स आदिं करिय वेदगसम्मत्तेण जहण्णद्धमंतरिय पुणो उवसमसेडिं समारुहणट्ठं दंसणमोहणीयमुवसमिय उवसमसम्मत्तं गयस्स जहण्णमंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १३५ ॥

कुदो ? अणादियमिच्छादिट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूणद्धपोग्गलपरियट्टमंतरिय अवसाणे सम्मत्तं संजमं च

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुसार सम्यग्दृष्टि वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगमं है ।

उक्त जीवोंका अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है ॥ १३४ ॥

क्योंकि, सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वको प्राप्त होकर जघन्य कालसे पुन: सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर उक्त जघन्य अन्तर प्राप्त होता है । इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये क्योंकि, उसमें विशेषताका अभाव है । इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टिका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिये । परन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवको आदि करके वेदकसम्यक्त्वसे जघन्य काल प्रमाण अन्तर करके पुन: उपशमश्रेणीपर चढ़नेके लिये दर्शनमोहनीयको उपशम कर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके यह जघन्य अन्तर कहना चाहिये ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३५ ॥

क्योंकि, अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त होनेपर उपार्ध अर्थात् कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तरको प्राप्त हो अन्तमें सम्यक्त्व एवं संयमको

जुगवं घेत्तूणंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तेण अबंधगत्तं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो। एवं वेदगसम्माइट्ठिस्स वि वत्तव्वं। णवरि अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वेदगसम्मत्तं घेत्तूण तत्थ वि अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छत्तेण अंतरिदो त्ति वत्तव्वं। अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अंतरं समाणेदव्वं[1]। एवमुवसमसम्माइट्ठिस्स वि वत्तव्वं, सामण्णसम्माइट्ठीहिंतो भेदाभावादो। एवं सम्मामिच्छाइट्ठिस्स वि। णवरि उवसमसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छत्तं णेदूण मिच्छत्तं गमिय अंतरावेदव्वो। अवसाणे वि उवसमसम्मत्तादो सम्मामिच्छत्तगवपढमसमए अंतरं समाणिय अंतोमुहुत्तमच्छिय अबंधभावं णेयव्वो।

खइयसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३६ ॥

सुगमं।

णत्थि अंतरं णिरंतरं ॥ १३७ ॥

खइयसम्माइट्ठीणं सम्मत्तंतरगमणाभावादो।

सासणसम्माइट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १३८ ॥

एक साथ ग्रहण कर अन्तरको समाप्त करते हुए अन्तर्मुहूर्तसे अबन्धकत्वको प्राप्त होने पर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार वेदकसम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि अनादिमिथ्यादृष्टि उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर और उसके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः वेदकसम्यक्त्वको ग्रहणकर और वहां भी अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः मिथ्यात्वसे अन्तरित किया, इस प्रकार कहना चाहिये। अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त करना चाहिये। इसी प्रकार उपशमसम्यग्दृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये, क्योंकि, सामान्य सम्यग्दृष्टियोंसे उसके कथनमें कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिये। विशेष इतना है कि उपशमसम्यग्दृष्टिको सम्यग्मिथ्यात्वमें लेजाकर पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त कराकर अन्तर कराना चाहिये। अन्तमें भी उपशमसम्यक्त्वसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अन्तरको समाप्त कर और अन्तर्मुहूर्त रहकर अबन्धकताको प्राप्त कराना चाहिये।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर नहीं होता, वे निरन्तर हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि अन्य सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं होते।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १३८ ॥

---

१ म. प्रती समाणदेव्वं इति पाठः।

सुगमं ।

जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १३९ ॥

कुदो ? पढमसम्मत्तं घेत्तूण अंतोमुहुत्तमच्छिय सासणगुणं गतूणादिं करिय मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सव्वजहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तुव्वेलणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पढमसम्मत्तपाओग्गसागरोवमपुधत्तमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं ठविय तिण्णि वि करणाणि काऊण पुणो पढमसम्मत्तं घेत्तूण छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए सासणं गदस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तंतरुवलंभादो। उवसमसेडीदो ओयरिय सासणं गंतूण अंतोमुहुत्तेण पुणो वि उवसमसेडिं चडिय ओदरिदूण सासणं गदस्स अंतोमुहुत्तमेत्तमंतरं उवलब्भदे, एदमेत्थ किण्ण परूविदं ? ण च उवसमसेडीदो ओदिण्णउवसमसम्माइट्ठिणो सासणं ण[1] गच्छंति त्ति णियमो अत्थि, 'आसाणं पि गच्छेज्ज' इदि कसायपाहुडे चुण्णिसुत्तदंसणादो। एत्थ परिहारो उच्चदे—उवसमसेडीदो ओदिण्ण-उवसमसम्माइट्ठी दोवारमेक्को ण सासणगुणं पडिवज्जदि त्ति। तम्हि भवे सासणं

यह सूत्र सुगम है।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ॥ १३९ ॥

क्योंकि, प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर और अन्तर्मुहूर्त रहकर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो आदि करके, पुनः मिथ्यात्वमें जाकर अन्तरको प्राप्त हो सबसे जघन्य पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण उद्वेलनकालकेद्वारा सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंके प्रथमसम्यक्त्वके योग्य सागरोपमपृथक्त्वमात्र स्थितिसत्वको स्थापित कर तीनों ही करणोंको करके पुनः प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहणकर उपशमसम्यक्त्वकालमें छह आवलियोंके शेष रहनेपर सासादनको प्राप्त हुए जीवके पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त होता है।

शंका—उपशमश्रेणीसे उतरकर सासादनको प्राप्त हो अन्तर्मुहूर्तसे फिर भी उपशमश्रेणीपर चढकर व उतरकर सासादनको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर प्राप्त होता है, उसका यहां निरूपण क्यों नहीं किया ? और उपशमश्रेणीसे उतरे हुए उपशमसम्यग्दृष्टिजीव सासादनको नहीं प्राप्त होते ऐसा कोई नियम नहीं है, क्योंकि, 'सासादनको भी प्राप्त होता है' इस प्रकार कषायप्राभृतमें चूर्णिसूत्र देखा जाता है।

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार कहते हैं—उपशमश्रेणीसे उतरा हुआ उपशमसम्यग्दृष्टि एक ही जीव दो बार सासादनगुणस्थानको प्राप्त नहीं होता। उसी

---

१ प्रतिषु णो (ण) इति पाठः।

पडिवज्जिय उवसमसेडिमारुहिय तत्तो ओदिण्णो वि ण सासणं पडिवज्जदि त्ति अहि-प्पाओ एदस्स सुत्तस्स । तेणंतोमुहुत्तमेत्तं जहण्णंतरं णोवलब्भदे ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १४० ॥

कुदो ? अणादियमिच्छाइट्ठिस्स अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए गहिदसम्मत्तस्स सासणं गंतूण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पढमसम्मत्तं घेतूण एगसमयं सासणो होदूण अंतरं समाणिय पुणो मिच्छत्तं सम्मत्तं च कमेण गंतूण अबंधभावं गदस्स उवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

मिच्छाइट्ठी मदिअण्णाणिभंगो ॥ १४१ ॥

जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि, इच्चेदेहि जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदादो ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४२ ॥

सुगमं ।

भवमें सासादनको प्राप्त कर उपशमश्रेणीपर आरूढ़ हो उससे उतरा हुआ भी जीव सासादनको प्राप्त नहीं होता, यह इस सूत्रका अभिप्राय है । इस कारण अन्तर्मुहूर्तमात्र जघन्य अन्तर प्राप्त नहीं होता ।

सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १४० ॥

क्योंकि अनादिमिथ्यादृष्टिके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर सासादनको प्राप्त हो कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक भ्रमणकर संसारके अन्तर्मुहूर्त शेष रहनेपर प्रथमसम्यक्त्वको ग्रहणकर एक समय सासादन रहकर अन्तरको समाप्त कर पुनः क्रमसे मिथ्यात्व और सम्यक्त्वको प्राप्त हो अबन्धकभावको प्राप्त होनेपर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

मिथ्यादृष्टिका अन्तर मति-अज्ञानीके समान है ॥ १४१ ॥

क्योंकि, जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टसे कुछ कम दो छयासठ सागरोपम इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरों की अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

संज्ञिमार्गणाके अनुसार संज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४३ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १४४ ॥

सण्णीहिंतो असण्णीणं गंतूण असण्णिट्ठिदिमच्छिय सण्णीसुप्पण्णस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टंतरुवलंभादो ।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४५ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १४६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १४७ ॥

असण्णीहिंतो सण्णीणं गंतूण सण्णिट्ठिदिं भमिय[1] असण्णीसुप्पण्णस्स सागरोवम-सदपुधत्तमेत्तंतरुवलंभादो ।

संज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

संज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्येय पुद्गलपरिवर्तनोंके बराबर है ॥ १४४ ॥

क्योंकि, संज्ञियोंसे असंज्ञियोंमें जाकर और वहां असंज्ञीकी स्थितिप्रमाण रहकर संज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

असंज्ञी जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सौ सागरोपमपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १४७ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंसे संज्ञियोंमें जाकर और वहां संज्ञीकी स्थितिप्रमाण काल तक भ्रमण कर असंज्ञियोंमें उत्पन्न हुए जीवके सौ सागरोपमपृथक्त्वमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

---

१ अ. क. प्रत्योः ' भविय ' इति पाठः ।

आहाराणुवादेण आहाराणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ? ॥ १४८ ॥

सुगमं ।

जहण्णेण एगसमयं ॥ १४९ ॥

एगविग्गहं काऊण गहिदसरीरम्मि तदुवलंभादो ।

उक्कस्सेण तिण्णिसमयं ॥ १५० ॥

तिण्णि विग्गहे काऊण गहिदसरीरम्मि तिसमयंतरुवलंभादो ।

अणाहारा कम्मइयकायजोगिभंगो ॥ १५१ ॥

जहण्णेण तिसमऊणखुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणी-उस्सप्पिणीओ, इच्चेदेहि जहण्णुक्कस्संतरेहि दोण्हमभेदा ।

एवमेगजीवेण अंतरं समत्तं ।

आहारमार्गणानुसार आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल तक होता है ? ॥ १४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक जीवोंका अन्तर जघन्यसे एक समयमात्र होता है ॥ १४९ ॥

क्योंकि, एक विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर उक्त एक समयमात्र अन्तर प्राप्त होता है ।

आहारक जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर तीन समयप्रमाण है ॥ १५० ॥

क्योंकि, तीन विग्रह करके शरीरके ग्रहण करलेनेपर तीन समय अन्तर प्राप्त प्राप्त होता है ।

आहारक जीवोंका अन्तर कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ १५१ ॥

क्योंकि जघन्यसे तीन समय कम क्षुद्रभवग्रहण और उत्कृष्टसे अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी, इन जघन्य व उत्कृष्ट अन्तरकी अपेक्षा दोनोंमें कोई भेद नहीं है ।

इस प्रकार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर समाप्त हुआ ।